संस्थापित १८६७ ई.

ओ३म्

# आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● अंक : १३ ● ३० मार्च, २०२३ (गुरुवार) चैत्र शुक्लपक्ष नवमी सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १९९ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१९६०८५३१२४

# उच्च शिक्षित वर्ग द्वारा अन्धानुकरण व मीडिया के भ्रामक प्रचार से पाखंडों की बाढ़

**–देवेंद्रपाल वर्मा**

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के नवनिर्मित सत्संग भवन में दिनांक २६ मार्च २०२३ को पूर्वान्ह १३६वीं साधारण सभा के अध्यक्षीय संबोधन में सभा प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा ने कहा कि ''महर्षि देव दयानंद का आर्य समाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लोगों में व्याप्त पाखंड व कुरीतियों को समाप्त कर वेदों का प्रचार प्रसार कर लोगों को शिक्षित करना था। उनके समय में अशिक्षित लोगों को पाखंड आदि के लिए आज की तुलना में बताना सरल था। जबकि आज पढ़ा-लिखा समाज व उच्च शिक्षित लोगों व मीडिया द्वारा भ्रामक समाचार दिखा कर, लोगों को मूर्ति पूजा व अनेक पाखंडों में धकेल रहे हैं। महर्षि के समय की तुलना में आज शिक्षण संस्थान आदि कई गुना ज्यादा है। लेकिन उतने ही ज्यादा लोग अंधविश्वासी व कपोल कल्पित बातों में उलूक मति हैं। हमारी पराधीनता का मूल कारण मूर्ति पूजा व ज्योतिषियों की अर्थहीन भविष्यवाणियां थीं।

> ● ''महर्षि दयानंद सरस्वती की 200वीं जयंती के शुभ अवसर पर उत्तर प्रदेश की समस्त आर्य समाजों द्वारा व्यापक स्तर पर प्रचार प्रसार''।

आर्य समाज ने दलितोद्धार, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध आदि की लड़ाइयां लड़ीं। कुछ तो सरकार ने कानून बनाकर समाप्त कर दिया कुछ लोगों में जागृति के आ जाने पर स्वतः खत्म हो गयीं।

सभा प्रधान ने आगे कहा कि सभा द्वारा कुछ समय पूर्व ''घर-घर यज्ञ-हर घर यज्ञ'' का कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य यह था कि आर्य समाजी अपने भवनों से निकलकर आम लोगों में वैदिक जनजागृति पैदा करें और लोग प्रभावित होकर वैदिक परंपराओं का पालन करें। आज आर्य समाज के अस्तित्व में होने का मूल आधार वेद है। वेद विमुख होने पर ही हम गुलाम व पराधीन हुए आज गुलामी का कारण पुनः उत्पन्न हो रहा है। लोगों में फिर वही बुराइयां पनप रही हैं उनको त्याग कर वेदोक्त मार्ग पर चल कर ही हम सुरक्षित रह पाएंगे। सभी आर्यों से मेरी अपील है कि अपने प्रचार को धार देकर जन जन तक पहुंच कर ऋषि के विचारों से उन्हें अवगत कराएं।

> ● ''युवाओं के चरित्र निर्माण हेतु विशेष प्रशिक्षण शिविर तथा महिलाओं को शिक्षित व संस्कारित करने का विशेष अभियान''।

## महर्षि के रास्ते पर चलकर ही राष्ट्र का विकास संभव है

**-पंकज जयसवाल**




आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अंतरंग सभा की बैठक दिनांक २५ मार्च २०२३ को मध्यान्ह नारायण स्वामी भवन, ५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ में सभा प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा की अध्यक्षता में संपन्न हुई।

> ● ''पश्चिम व मध्य उत्तर प्रदेश में दो बृहद आर्य महासम्मेलन का आयोजन शीघ्र''।

प्रातः देव यज्ञ के मुख्य यजमान सभा प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा एवं यज्ञ के ब्रह्मा पंडित संतोष वेदालंकार, लखनऊ, आचार्य रणधीर शास्त्री (विद्या भास्कर) मेरठ, आचार्य अग्निव्रत शास्त्री लखनऊ थे। यज्ञ में समस्त पदाधिकारीगण व प्रदेश की आर्य समाजों के सैकड़ों आर्य जन उपस्थित थे।

यज्ञोपरांत ओ३म् ध्वजारोहण सभा प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा द्वारा सभा प्रांगण में अनेकों आर्यजनों की उपस्थिति में किया गया। ध्वजगान श्री प्रभात कुमार, अंतरंग सदस्य द्वारा किया गया।

ईश प्रार्थना के पश्चात सभा प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा जी की अध्यक्षता में अंतरंग सभा की बैठक एजेंडे में लिखे बिंदुओं को लेकर शुरू हुई। जिसमें समस्त पदाधिकारियों सहित, प्रतिष्ठित सदस्य, अंतरण सदस्य व सहयुक्त सदस्य उपस्थित थे।

साधारण सभा के अधिवेशन में आर्य उपप्रतिनिधि सभा गाजियाबाद के प्रधान श्री सत्यवीर सिंह चौधरी ने अपने उद्बोधन में




कहा कि प्रायः लोग आर्य समाजियों को नास्तिक समझ लेते हैं, जो ठीक नहीं। आर्य समाजी पक्का ईश्वर भक्त होता है। आज हर आर्य समाजी को महर्षि के उद्देश्य को साथ लेकर चलने की आवश्यकता है।

आचार्य रणधीर शास्त्री (विद्या भास्कर) ने उपस्थित आर्यों से आर्य समाज के तीसरे नियम का उल्लेख करते हुए कहा वेद सब सत्य नियमों की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। उन्होंने महर्षि रचित संस्कार विधि को विश्व में मनुष्य निर्माण की श्रेष्ठ पुस्तक बताया।

अधिवेशन में उपस्थित आर्यों को उद्बोधन करते हुए आचार्य चंद्र देव शास्त्री फर्रुखाबाद ने बताया कि महर्षि दयानंद के समय की तुलना में आज प्रचार प्रसार करना काफी कठिन है। आर्य समाजियों को धन व पद के लालच को त्याग कर मिशनरी भाव से प्रचार करना होगा।

वैदिक विदुषी लखनऊ की सुश्री प्रवीण सत्येंद्र विद्यालंकार ने कहा कि महर्षि दयानंद सरस्वती वैदज्ञ, समाज सुधारक, गौ रक्षक आदि के साथ-साथ पर्यावरण विद भी थे उन्होंने ऋग्वेद भाष्य भूमिका के मंत्र का उदाहरण देते हुए इसे समझाया। इससे पूर्व बिहार से पधारी भजनोपदेशिका बहन धर्म रक्षिता ने अपने मधुर भजनों के द्वारा लोगों का मन मोह लिया।

> ● ''आर्य समाज के भवनों से निकलकर साधारण लोगों में महर्षि के विचारों का प्रचार कर ''कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्'' को सार्थक करने के उद्देश्य को लेकर सभी आर्यों का आह्वाहन''।

प्रातः देव यज्ञ सभा प्रधान श्री देवेंद्रपाल वर्मा, के यजमानत्व में आचार्य चंद्र देव शास्त्री फर्रुखाबाद, डा. निष्ठा विद्यालंकार लखनऊ, आचार्य रणवीर शास्त्री मेरठ के ब्रह्मत्व एवं अनेक आर्यजनों की उपस्थिति में किया गया।

अधिवेशन के विशिष्ट अतिथि भारत केसरी डिप्टी एस.पी., श्री भगत सिंह का जोरदार स्वागत व सम्मान किया गया। श्रीमती गायत्री दीक्षित (उप प्रधान), श्री हरवीर सिंह सुमन, (उप प्रधान), श्री राम स्नेही सिंह, आचार्य रणधीर शास्त्री, आचार्य चंद्र देव शास्त्री, ठाकुर ओमपाल सिंह, चौधरी रामपाल सिंह, श्री सुनील कुमार (उप मंत्री), श्री ज्ञानेन्द्र मलिक (उप मंत्री), श्री बिजेन्द्र सिंह (उप मंत्री), आचार्य दीपक शास्त्री (पुस्तकाध्यक्ष), श्री शिवपाल सिंह, कर्नल ढाका, डॉ. अजीत कुमार, डॉ. सुनील सिंह (उप पुस्तकाध्यक्ष), सुश्री प्रवीण सत्येंद्र विद्यालंकार आदि लोगों को महर्षि का फोटो व प्रतीक चिन्ह आदि देकर सम्मानित किया गया।

अधिवेशन में श्री देवेन्द्र कुमार, श्री राम कृष्ण पट्टू, श्री श्रवण महेश्वरी, श्री प्रभात कुमार, चौ. घनवीर सिंह, श्री सुरेश गुप्ता, श्री लोकश आर्य, श्री प्रताप नारायण मिश्रा, श्री राजा सिंह भदौरिया, श्री रवीन्द्र पाल आर्य, डॉ. सर्वेश कुमार आर्य, श्री अखिल जैतली, साहु विजय पाल सरन, श्री भूपेन्द्र चौधरी, श्री सतीन्द्र शास्त्री, श्री राजकुमार अग्रवाल, श्री रमेन्द्र देव, श्री राम देव शास्त्री एवं प्रदेश की अनेक समाजों के प्रतिनिधि आदि उपस्थित हुये।

अंत में आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री पंकज जायसवाल ने अधिवेशन के समापन भाषण में पधारे सभी आर्यों को धन्यवाद देते हुए कहा कि ''हम महर्षि के बताए रास्ते पर चलकर ही विकास की बुलंदियों को छू सकेंगे। उन्होंने प्रदेश के समस्त आर्यों से महर्षि के संदेश को घर-घर पहुंचाने का संकल्प लेने की अपील की, ताकि हम संपूर्ण विश्व को आर्य बनाने का महर्षि का सपना साकार कर सकें।

●●●

## वेदामृतम्

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः, पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि। ऋ. ९.४१.३

आग मेरे आत्म-लोक में बरसात छाई है। सोम प्रभु मेघ बनकर बरस रहे है। साधारण मेघ भो 'पवमान' होता है, क्योंकि वह पवित्रता-दायक निर्मल जल की वर्षा करता है। फिर मेरे सोम प्रभु अवमान' क्यों न हो। उनमें तो यह पवित्रता-दायक आनन्द-रस भरा है, जो आत्मा और मन के युग-युग से संचित पाप को धो देता है। सोम् प्रभु 'शुष्मी' है, बलवान् है, बलियों के बली हैं। अतः अपनी शरण में आनेवाले को आत्मिक बल से परिपूर्ण कर देते हैं। उनसे वरसने वाली बल की दृष्टि निर्बल को बली, असहाय उत्साह एवं जागृति से हीन को उत्साही एवं जागरूक बना देती है। आज मैं स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहा हूँ कि शुष्मी पवमान सोम प्रभु की आनन्दमयी रिमभिम वर्षा मेरे अन्तलोक में हो रही है। वर्षा की रिमझिम में जो संगीत होता है, वैसा ही संगीत मेरी आत्मा में उठ रहा है। उस दिव्य संगीत मैं अपनी सुधबुध खो बैठा हूँ। बल और आनन्द की रिमझिम के साथ-साथ शीतल, मन्द, सुगन्ध प्राण-पवन बहकर मेरे मानस में नवीनता और स्फूर्ति उत्पन्न कर रहा है। वर्षा होने पर जैसे भूलोक पर सर्वत्र हरियाली छा जाती है, ऐसे ही मेरा अन्तलोंक भी सत्य, न्याय, दया, श्रद्धा आदि सद्गुणों की हरियाली से हरा-भरा हो गया है। बरसात में जैसे नदियाँ पर्वतों से नीचे मैदानों में बहने लगती हैं, ऐसे ही मेरे आत्मा के उच्च शिखरों पर बरसे हुए सोम प्रभु के दिव्य रस की नदियाँ नीचे अवतरण कर मेरे मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि को आप्लावित कर रही है। बरसाती प्रकाश में जैसे बिजलियाँ चमकती है, वैसे ही मेरे हृदयाकाश में आज दिव्यता की विद्युत चमकार कर रही है। वे विद्युत मेरे मानस को प्रकाश का सूत्र पकड़ा रही हैं। उन क्षणप्रभा विद्युतों से मैं अपने मानस में स्थायी विद्यु-धारा को अर्जित कर रहा हूँ, जो जीवन पर्यन्त मुझे ज्योति देती रहेगी। मैं मुग्ध हूँ प्रभु-वर्षा की रिमझिम पर, में मुग्ध हूं दिव्य विद्युतों की द्युति पर। हे सोम प्रभु ! ऐसी कृपा करो कि यह बरसात मेरे आत्म-लोक में सदा उमड़ती रहे, सदा मुझे दिव्य बलदायी रस और प्रकाश प्रदान करती रहे।

साभार-वेद मंजरी

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

# सम्पादकीय.....

## रामायण का मार्मिक दृश्य

असहाय दशरथ पत्नी की बातें सुनते रहे। उनका हृदय दुःख से फटने लगा। किन्तु कैकेयी तो विस्मय से स्तब्ध रह गई। ऐसी निर्दय आज्ञा को सुनकर भी राम की मुखाकृति तनिक भी विकृत नहीं हुई। दशरथ नन्दन मुस्कराकर बोले ''माँ! आपकी जो आज्ञा। लीजिये, अभी वल्कल धारण कर पिता के कहने से क्यों, अपनी इच्छा से ही मैं भरत के लिए सर्वस्व त्यागने को तैयार हूँ, जब पिताजी की भी यही आज्ञा है, तब तो एक क्षण का भी विलम्ब नहीं कर सकता। मैं उनका सेवक हूँ, सेवक को आज्ञा देते हुए राजा को तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिए। उनकी आज्ञा का पालन करना मैं अपना अहोभाग समझता हूँ। मुझे इसी बात का दुःख है कि राजा ने, मेरे पिताजी ने अपने मुख से मुझे आज्ञा नहीं दी? मैं सहर्ष वन जा रहा हूँ भाई भरत के पास शीघ्रता से दूत भेज दिये जायें।''

ऐसे धीर-गम्भीर शब्द कहकर राम चुप हो गये। उस समय उनका सुन्दर मुख घी से प्रज्वलित अग्नि की भाँति तेजोमय था। दुष्ट कैकेयी स्वार्थसिद्धि पाकर प्रसन्न हो गई। उसे इसका तनिक भी भास न हुआ कि आगे उसके लिए कौन-कौन से दुःख पड़े हैं। अपने पुत्र के मुख से तिरस्कारोक्ति सुनने से अधिक एक माता के लिए बुरी चीज और क्या हो सकती है? उस समय लोभ से कैकेयी अंधी हो गई थी। उसमें भरत के स्वभाव को जानने की क्षमता भी नहीं रही थी।

महाराज दशरथ तड़पने लगे। उनकी स्थिति चारों ओर से मार्ग रोककर पकड़े जाने वाले जंगली हाथी की भाँति हो गई। कैकेयी आगे बोली- ''राम! राजा के मुख से आज्ञा सुनने के लिए ठहरो मत। यहाँ से शीघ्र ही निकल पड़ो।''

राम ने विनय से कहा- ''माँ! आपने मुझे ठीक से पहचाना नहीं। मैं किसी चीज की इच्छा से विलम्ब नहीं कर रहा हूँ। मेरी एक मात्र इच्छा पिता के वचनों का पालन ही है। भरत राज्यभार अच्छी प्रकार संभाले और वृद्ध पिता को भली प्रकार संभाले, मैं यही चाहता हूँ।''

दशरथ से अब सुना नहीं गया। वह फूट-फूट कर रोने लगे। श्रीरामचन्द्र ने पिता के और कैकेयी के चरण छूकर प्रणाम किया और वहां से चल दिये।

लक्ष्मण अब तक बाहर खड़े-खड़े सब प्रकरण देख रहे थे। क्रोध से उनकी आंखें लाल हो गईं। वह राम के पीछे-पीछे जाने लगे।

सामने अभिषेक के लिये लाये गये पूर्ण कुम्भों को देखकर भी राम का मुख कमल विषादग्रस्त नहीं हुआ। उनकी प्रदक्षिणा करते हुए श्रीराम आगे बढ़े। राम के साथ श्वेत छत्र-चमर लिये जन समुदाय खड़ा था। उनको श्रीराम ने अलग हटा दिया। वहां एकत्र लोगों से विनती की कि सब अपने-अपने स्थान को लौट जायें। और जितेन्द्रिय रघुकुलमणि श्रीराम माता कौशल्या के पास उनको सम्पूर्ण वृतान्त सुनाने तथा उनसे विदा लेने के लिए गए। श्रीरामचन्द्र माता कौशल्या के महल में पहुँचे। वहां बहुत से ब्राह्मण, स्त्रियाँ और अतिथिगण एकत्र थे। सब आनन्दित मंगल घड़ी की थे कि राम युवराज बनने वाले हैं और सब उसी रेशमी वस्त्र पहने हवन कर रही को देखा, वह उठ कर राम से कहने लगीं, ''इस पर बैठ जाओ। प्रतीक्षा में थे। सामने वाले मण्डप में महारानी कौशल्या धवल थीं। अपने पुत्र के कल्याण के लिए वह देवताओं का ध्यान कर रही थीं। जैसे ही उन्होंने रामचन्द्र को देखा वह उठ खड़ी हुई। उन्होंने पुत्र को आलिंगन किया, उसका माथा चूमा और युवराज के उपयुक्त आसन दिखाकर राम से कहने लगी। इस पर बैठ जाओ।''

''माँ! मैं ऐसे आसन पर अब नहीं बैठ सकता। नीचे दर्भ के आसन पर ही बैठूंगा। आज से मैं तपस्वी हुआ हूँ। मैं आपको एक समाचार सुनाने आया हूँ। उससे आपको दुःख तो होगा, पर आपको शांति रखनी होगी।'' यह कहकर श्रीराम ने माता कौशल्या को सारा वृतान्त कह सुनाया और उनसे आशीर्वाद मांगा।

राम कहने लगे ''महाराज भरत को राज्य देना चाहते हैं। उनकी आज्ञा है कि मैं चौदह वर्ष दण्डकारण्य में वास करूं। आप से विदा लेकर मुझे आज ही देश छोड़कर चले जाना होगा।''

ऐसी कठोर बात को सुनते ही देवी कौशल्या नीचे गिर पड़ी। लक्ष्मण और राम ने उनको दौड़कर सम्भाला। कौशल्या राम से लिपटकर रोने लगीं'' ''मेरा हृदय पत्थर का बना हुआ है या लोहे का? मैं अभी तक जीवित कैसे हूँ।''

राम ने कौशल्या माता को ढाढस बँधा, अयोध्या वासियों को रोला-बिलखता छोड़ पिता को दिये वचन को पूरा करने के लिए चौदह वर्ष के लिए वन चले गये। राम ने अपने जीवन में कभी मर्यादाओं को नहीं तोड़ा। सभी मनुष्यों का सम्मान किया और दुष्टों को दण्ड भी दिया। यही कारण है कि राम आज भी प्रासंगिक हैं। राम जन-जन के मन में आज भी मौजूद हैं। साधारण लोग जब मिलते हैं तो राम राम मिल कर चलते हैं तो राम-राम। राम सत्य के पर्याय थे। इस कारण अन्तिम यात्रा में ''राम नाम सत्य है'' कहकर लोग उन्हें स्मरण करते हैं। सभी लोगों को राम के समान ही आचरण करना चाहिये यही राम राज्य का मूल तत्व है।

-सम्पादक

गतांक से आगे.....

# सत्यार्थ प्रकाश

## अथ त्रयोदश समुल्लास

## अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

(समीक्षक) क्या रविवार एक ही पवित्र और छः दिन अपवित्र हैं ? और क्या परमेश्वर ने छः दिन तक कड़ा परिश्रम किया था कि जिससे थक के सातवें दिन सो गया? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिन को क्या दिया ? अर्थात् शाप दिया होगा। ऐसा काम विद्वान् का भी नहीं तो ईश्वर का क्यों कर हो सकता है? भला रविवार में क्या गुण और सोमवार आदि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्र तथा वर दिया और अन्यों को ऐसे ही अपवित्र कर दिये।। ४५ ।।

४६ - अपने परोसी पर झूठी साक्षी मत दे ।। अपने परोसी की स्त्री और उसके दास उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और किसी वस्तु का जो तेरे परोसी की है लालच मत कर।।

- तौ० या० प० २०। आ० १६ । १७ ।।

(समीक्षक) वाह! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर। जैसी यह केवल मतलब सिन्धु और पक्षपात की बात है ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर अवश्य होगा। यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्य मात्र को परोसी मानते हैं तो सिवाय मनुष्य के अन्य कौन स्त्री और दासी आदि वाले हैं कि जिनको अपरोसी गिनें ? इसलिये ये बातें स्वार्थी मनुष्यों की हैं ईश्वर की नहीं।। ४६।।

४७- जो कोई किसी मनुष्य को मारे और वह मर जाये वह निश्चय घात किया जाय।। और वह मनुष्य घात में न लगा हो परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सौंप दिया हो तब मैं तुझे भागने का स्थान बता दूँगा।। - तौ० या० प० २१ । आ० १२ १३।।

(समीक्षक) जो यह ईश्वर का न्याय सच्चा है तो मूसा एक आदमी को मार गाड़ कर भाग गया था उसको यह दण्ड क्यों न हुआ? जो कहो ईश्वर ने मूसा को मारने के निमित्त सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ क्योंकि उस मूसा का राजा से न्याय क्यों न होने दिया ? ।। ४७।।

४८-और कुशल का बलिदान बैलों से परमेश्वर के लिए चढ़ाया।। और मूसा ने आधा लोहू लेके पात्रों में रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का।। और मूसा ने उस लोहू को लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियम का है जिसे परमेश्वर ने इन बातों के कारण तुम्हारे साथ किया है। और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि पहाड़ पर मुझ पास आ और वहां रह और मैं तुझे पत्थर की पटियां और व्यवस्था और आज्ञा मैने लिखी है दूंगा।।

-तौ० या० प० २२ आ० ५। ६। ८ १२।।

(समीक्षक) अब देखिये! ये सब जंगली लोगों की बातें हैं वा नहीं? और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता और वेदी पर लोहू छिड़कना यह कैसी जंगलीपन और असभ्यता की बात है ? जब ईसाइयों का खुदा भी बैलों का बलिदान लेवे तो उसे भक्त बैल गाय के बलिदान की प्रसादी से पेट क्यों न भरें ? और जगत् की हानि क्यों न करें? ऐसी-ऐसी बुरी बातें बाइबल में भरी हैं। इसी के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं। और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था। जब वह खुदा स्याही, लेखनी, कागज, नहीं बना जानता और न उसको प्राप्त था इसीलिये पत्थर की पटियों पर लिख-लिख देता था और इन्हीं जंगलियों के सामने ईश्वर भी बन बैठा था।।४८।।

४९-और बोला कि तू मेरा रूप नहीं देख सकता क्योंकि मुझे देख के कोई मनुष्य न जीयेगा। और परमेश्वर ने कहा कि देख एक स्थान मेरे पास है। और तू उस टीले पर खड़ा रह।। और यों होगा कि जब मेरा विभव चल निकलेगा तो मैं तुझे पहाड़ के दरार में रक्खूँगा और जब लों जा निकलूं तुझे अपने हाथ से ढांपूंगा। और अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न दंगा।।

-तौ० या० प० ३३। आ० २० २१ २२ २३ ।।

(समीक्षक) अब देखिये! ईसाइयों का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी और मूसा से कैसा प्रपंच रच के आप स्वयम् ईश्वर बन गया। जो पीछा देखेगा, रूप न देखेगा तो हाथ से उसको ढांप दिया भी न होगा। जब खुदा ने अपने हाथ से मूसा को ढांपा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उसने न देखा होगा ? ।।४९।।

क्रमशः अगले अंक में...

# दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

## काशी में विज्ञापन पत्र

सितम्बर, १८७६

सब सज्जन लोगों को विदित किया जाता है कि इस समय पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज काशी में आकर श्रीयुत महाराजे विजयनगर के अधिपति के आनन्द बाग में जो महमूदरंग के समीप है, निवास करते हैं। वे वेदमत का ग्रहण करके उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं मानते। किन्तु जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदोक्त १- सृष्टिक्रम २- प्रत्यक्षादि प्रमाण ३- आप्तों का आचार और सिद्धान्त तथा ४-आत्मा की पवित्रता और विज्ञान के विरुद्ध होने के कारण पाषाणादि मूर्तिपूजा, जल और स्थल विशेष पाप निवारण करने की शक्ति व्यास मुनि आदि के नाम से छल से प्रसिद्ध किये नवीन व्यर्थ पुराण नामक आदि, ब्रह्मवैवर्तादि ग्रन्थ, परमेश्वर के अवतार व पुत्र होके अपने विश्वासियों के पाप क्षमा कर मुक्ति देनेहारे का मानना, उपदेश के लिये अपने मित्र पैगम्बर को पृथ्वी पर भेजना, पर्वतों का उठाना, मुर्दों का जिलाना, चन्द्रमा का खण्डन करना, कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना, ईश्वर को नहीं मानना, स्वयं ब्रह्म बनना अर्थात् ब्रह्म से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी न मानना, जीव ब्रह्म को एक ही समझना, कण्ठी, तिलक और रुद्राक्षादि धारण करना और शैव, शाक्त, वैष्णव गाणपत्यादि सम्प्रदाय आदि हैं, इन सबका खण्डन करते हैं। इससे इस विषय में जिस किसी वेदादि शास्त्रों के अर्थ जानने में कुशल, सभ्य, शिष्ट, आप्त विद्वान् को विरुद्ध जान पड़े, अपने मत का स्थापन और दूसरे के मत का खण्डन करने में सामर्थ्य हो, वह स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करके पूर्वोक्त व्यवहारों को स्थापित करे । इससे विरुद्ध मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ रहेंगे । वेदार्थ निश्चय के लिये जो ब्रह्मा से लेके जमिनि मुनि पर्यन्त के बनाये ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थ हैं वे वादी और प्रतिवादी उभय पक्षवालों को माननीय होने के कारण माने जावेंगे । और जो इस सभा में सभासद् हों वे भी पक्षपात रहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप तथा साधनों को ठीक-ठीक जानने, सत्य के साथ प्रीति और असत्य के साथ द्वेष रखने वाले हों, इनके विपरीत नहीं। दोनों पक्ष वाले जो कुछ कहें उसका शीघ्र लिखने वाले तीन लेखक लिखते जावें । वादी और प्रतिवादी अपने-अपने लेख के अन्त में अपने-अपने लेख पर हस्ताक्षर से अपना-अपना नाम लिखे। तब जो मुख्य सभासद् हों वे भी दोनों के लेख पर हस्ताक्षर करें । उन तीन पुस्तकों में से एक वादी, दूसरा प्रतिवादी को दिया जाय और तीसरा सब सभा सम्मति से किसी प्रतिष्ठित राजपुरुष की सभा में रक्खा जावे कि जिससे कोई अन्यथा न कर सके। जो इस प्रकार होने पर भी काशी के विद्वान् लोग सत्य और असत्य का निर्णय करके औरों को न करावेंगे तो उनके लिये अत्यन्त लज्जा की बात है, क्योंकि विद्वानों का यही स्वभाव होता है जो सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जान के सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग कर दूसरों को कराके आप आनन्द में रहना औरों को आनन्द में रखना।

-पण्डित भीमसेन शर्मा (देवेन्द्रनाथ २/२२१)

# रामायण-सार

-स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

श्री रामचन्द्रजी के भक्तो! दिन-रात रामायण के पढ़नेवालो! महाराज रामचन्द्रजी को अपना बड़ा माननेवालो! देश के क्षत्रिय जनो! आप रामायण को, जो आर्यकुलभूषण, क्षत्रिय कुल दिवाकर वेदवित्, वेदोक्त कर्मप्रचारक, देशरक्षक, शूर-सिरताज, रघुकुलभानु, दशरथात्मज, महाराजाधिराज महाराज रामचन्द्रजी का जीवन-चरित सदा पढ़ते-सुनते हैं, परन्तु शोक है कि आप उस महानुभाव के दिव्य जीवन से कुछ भी लाभ नहीं उठाते। महाशयो! यह रामचरित्र ऐसा उत्तम है कि यदि मनुष्य इसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें तो अवश्य मुक्ति पद को प्राप्त हो जाए।

महाशयो! रामायण के आदि में महाराज रामचन्द्रजी के जन्म का वृत्तान्त लिखा है, जिससे बोध होता है कि हमारे देश के राजाओं को जब सन्तान की आवश्यकता होती थी तब वे लोग विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ कराते थे। इस समय के लोगों की भाँति गाजीमियाँ की कब्रों में जाने और पूजा करने के ढकोसले नहीं करते थे। वे कभी सण्डों-मुष्टण्डों से सन्तान न चाहते थे। वे गूगापीर और मसानी को नहीं मानते थे। वे टोने और धागे नहीं कराते थे। ये सब शिक्षायें आपको महाराज रामचन्द्रजी के जन्म से प्राप्त होती हैं।

हे रामायण के पढ़नेवालो! ऐसी मूर्खता की बातों को शीघ्र त्यागकर यज्ञादि कर्म प्रारम्भ करो। पुनः महाराज का वसिष्ठजी से विद्याभ्यास करना है, जिससे बोध होता है कि पूर्व-समय में सभी क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य-द्विजातिमात्र पढ़ते थे। आजकल की भाँति ऐसा न था कि विद्योपार्जन को आजीविका के लिए समझें, अपितु विद्याभ्यास मनुष्यत्व का हेतु माना जाता था मूर्ख को मनुष्य की संज्ञा ही नहीं मिलती थी। हे रामायण के पढ़नेवालो। शीघ्र विद्याभ्यास करो और उस वेद-विद्या को पढ़ो जिसे महाराज रामचन्द्रजी ने पढ़ा था। उस वेद-ज्ञान को समस्त संसार में फैलाओ। तत्पश्चात् महाराज रामचन्द्रजी का विश्वामित्र के साथ जाना है, जो इस बात का पूरा प्रमाण है कि पूर्व-समय में विद्वानों और तपस्वियों का कैसा मान था! देखो, राजा दशरथ ने प्राणों से अधिक प्यारे अपने दोनों पुत्र विश्वामित्र को दे दिये। दूसरे, उस काल में क्षत्रियों के बालक ऐसे बली होते थे कि रामचन्द्रजी छोटी-सी अवस्था में भी ऋषि के साथ वन जाने से भयभीत नहीं हुए और दोनों भाइयों ने सहस्त्रों दुष्ट राक्षसों को मार गिराया। ब्रह्मचर्य, विद्या और धर्म के ऐसे प्रताप को देखकर भी हम लोग धर्म नहीं करते।

तत्पश्चात् रामचन्द्रजी का जनकपुर में जाकर धनुष तोड़ना लिखा है। इससे भी उनके बल की महिमा विदित होती है। इसके पश्चात् महाराजा रामचन्द्रजी के विवाह का वृत्तान्त है, जिससे यह विदित होता है कि उस काल में स्वयंवर की रीति थी। आजकल की भाँति गुड्डे-गुड़ियों का विवाह, अर्थात् बाल-विवाह का प्रचार न था। कन्या और वर दोनों ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और जब वे पूर्ण विद्वान् और बल-वीर्य में पुष्ट हो जाते थे तब विवाह करते थे, जिससे पति और पत्नी में सदा प्रीति रहती थी और उनके गृहस्थाश्रम सुख से व्यतीत होते थे तथा सन्तान हृष्ट-पुष्ट और शुद्ध बुद्धिवाली उत्पन्न होती थी। रामायण के माननेवालो! आप क्यों बालविवाह करके अपनी सन्तान को नष्ट करते हो ?

इसके पश्चात् महाराज को राज मिलने का लेख है और कैकेयी के आदेश से महाराज का वन को जाना और दशरथ महाराज की मृत्यु लिखी है। इससे क्या ज्ञात होता है? प्रथम तो यह कि नीच के संग से सदा हानि होती है। देखो, कैकेयी ने मन्थरा के संग से अपना सुहाग नष्ट किया। संसार को दुःख दिया, जगत् में अपयश लिया। जिस पुत्र के लिए यह अधर्म किया था, उस पुत्र ने भी उसको बुरा कहा। क्या इससे कुसंग से बचने की शिक्षा नहीं मिलती? जो लोग अधर्म करते हैं उनके घर के लोग भी उन्हें बुरा कहते हैं। दूसरे, महाराज दशरथ ने राज्य त्याग दिया, अपने प्यारे, नहीं-नहीं, नयनों के तारे पुत्र को चौदह वर्ष का वनवास दिया, अपने प्राणप्रिय पुत्र का वियोग स्वीकार किया, परन्तु अपना वचन नहीं तोड़ा। जिससे संसारभर में यश लिया और संसार को यह शिक्षा दी कि मनुष्य को जो कुछ किसी को देना हो शीघ्र दे दे, परन्तु किसी से प्रतिज्ञा न करे, न जाने कब कैसा समय आ जाए! क्योंकि, राजा दशरथ कैकेयी को यदि वर न देते तो उनको यह कष्ट और पुत्र का वियोग न सहना पड़ता। यहाँ बन्धुओ, बहुत-सी शिक्षाएँ मिलती हैं, जैसे अन्धे माता-पिता अपने पुत्र श्रवण की मृत्यु से मर गये। इसी के फल से राजा दशरथ भी अपने पुत्र के वियोग से मरे। महाराज रामचन्द्रजी के वन-गमन के समय लक्ष्मणजी का सङ्ग में जाना भी अत्यन्त शिक्षापूर्ण है। देखो, उस समय के लोग कैसे पितृभक्त होते थे! महाराजा रामचन्द्रजी ने पिता के कहने से राज ही नहीं त्यागा, वनवास भी स्वीकार किया। क्या आजकल रामायण के पढ़नेवाले अपने पितरों की आज्ञा का पालन करते हैं? दूसरे, लक्ष्मणजी का संग जाना भाइयों की प्रीति का प्रमाण देता है। लक्ष्मणजी ने भाई के लिए देश व माता-पिता का सुख त्याग दिया। सच्चे भाइयों की प्रीति ऐसी होती है। क्या आजकल के रामायण पढ़नेवाले अपने भाइयों से ऐसी प्रीति करते हैं? महाराज के साथ सीताजी का वन-गमन लिखा है, जिससे स्वयंवर की रीति का गुण और सीताजी का पतिव्रत धर्म झलकता है। क्या आजकल के लोग बालविवाह से इस पतिव्रत-धर्म की-धर्म की आशा रखते हैं? सीताजी ने अपने पति के लिए माता-पिता, सास, राजगृह का सुख त्याग दिया और पति के साथ वन-वन घूमना स्वीकार किया तथा पति के बिना सब सुखों को दुःखस्वरूप समझा। आह! क्या ही उत्तम पतिव्रत-धर्म उस समय देश में प्रचलित था! आजकल की बालविवाह की पत्नी तो सदा मेलों में गंगा किनारे मन्दिरों में घूमना धर्म समझती हैं, सच्चे पतिव्रत-धर्म का तो उनमें लेश भी नहीं रहा।

पश्चात् महाराजा भरत का रामचन्द्रजी को लेने जाना लिखा है। वह क्या ही देश के सौभाग्य का समय था कि अधिकारी के अधिकार का इतना ध्यान रक्खा जाता था! भरतजी में राज्य की तृष्णा नहीं थी। सबसे अधिक भाई की प्रीति दिखाई। फिर वन में रावण की बहिन सूर्पनखा का रामचन्द्रजी के पास जाकर विवाह करने की प्रार्थना करना और महाराज का मना करना, उसका न मानना और हठ करना, लक्ष्मणजी का उसकी नाक काटने का वर्णन है। इससे रामचन्द्र का एक ही स्त्री से सन्तुष्ट रहकर परस्त्री-गमन व विवाह से घृणा करना प्रकट है। क्या रामायण के पढ़नेवाले यहाँ से शिक्षा ग्रहण कर परस्त्री-गमन के दोषों का त्याग करेंगे? प्यारे देशवासियो परस्त्री-गमन जैसे घोर पाप को शीघ्र त्यागो! यह भी यौवन के विवाह का फल है कि पति और पत्नी में ऐसी प्रीति है कि पत्नी उसके लिए घर-बार सब कुछ त्याग दे और पति उसके लिए संसारभर की स्त्रियों को काक-विष्ठा के समान माने। इससे यह भी शिक्षा मिलती है कि जो अधर्म पर हठ करता है उसकी नाक काटी जाती है। वीर क्षत्रियगण ऐसे हठी और दुराचारी को सदा दण्ड ही दिया करते थे।

इसके पश्चात् रावण का योगी-स्वरूप में आना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि जब दुष्ट अपने में बल नहीं देखता तब इसी प्रकार के छल करके सत्पुरुषों को कष्ट देता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि किसी के बाह्यस्वरूप पर नहीं रीझना चाहिए, क्योंकि दुष्टजन भी अच्छे पुरुषों का आकार बना सकते हैं। शोक है कि इस बात को देखकर भी हमारे देशवासी अपनी स्त्रियों को मुष्टण्डे वेषधारियों के पास जाने से नहीं रोकते! जब सीता जैसी पतिव्रता स्त्री को एक कपटी पुरुष धोखा देकर निकाल ले-गया तो और साधारण स्त्रियों को वे क्या समझते हैं।

इसके पश्चात् जटायु का रावण के साथ युद्ध करके प्राण देना लिखा है, जिससे सच्चे मित्रों का मित्र-भाव ज्ञात होता है। जटायु ने प्राण दिये, परन्तु अपने जीतेजी अपने मित्र दशरथ की पतोहू को दुष्ट रावण से बचाया। क्या रामायण-प्रेमी अपने मित्रों का इस पक्षी से भी न्यून उपकार करेंगे?

उसके आगे रामचन्द्र जी का सीताजी से वियोग और विलाप है, जिससे ज्ञात होता है कि संसार में संयोग का वियोग अच्छे-अच्छे महात्माओं को भी घबराहट में डाल देता है। उसके पश्चात् रामचन्द्रजी को सुग्रीव का मिलना है, जिससे ज्ञात होता है कि संसार में दो प्राणियों के मेल से दोनों का कार्य सिद्ध होता है। तत्पश्चात् रामचन्द्रजी का बाली को मारना लिखा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जो किसी से शत्रुता रखता है उसका एक दिन अवश्य नाश हो जाता है। फिर महाराज का समुद्र पर पुल बाँधना है, जो उस समय की विशाल विद्या और उन महात्माओं के महान् प्रयत्न का साक्षी है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि मनुष्य दृढ़ निश्चय रखता हो तो अवश्य कृतकार्य होगा। इसके पश्चात् विभीषण का रावण से विरुद्ध होकर रामचन्द्रजी से मिलना है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जब बुरे दिन आते हैं तब भाई भी शत्रु बन जाते हैं और जिस घर में दो मत होते हैं वह एक दिन अवश्य नष्ट होता है। कारण यह कि रावण और विभीषण का एक मत न था, इसी से विभीषण उससे अप्रसन्न हो गया और यही मतवाद भारत का नाशक है। तीसरे, इससे यह भी ज्ञात होता है कि जब घर में फूट पड़ती है तब शीघ्र सत्यानाश हो जाता है, अतः हे सज्जन पुरुषो! तुम सदा फूट से अलग रहो। हे रामायण के पढ़नेवालो! तुम कभी भी अपने भाई से विरोध न करो और मतवाद को नष्ट करो।

इसके पश्चात् रावणादि का महाराजा रामचन्द्रादि के हाथ से मारा जाना है, जिससे ज्ञात होता है कि जो अपने बल से बढ़कर छल के आश्रय काम करता है, वह अवश्य नष्ट हो जाता है। देखो, रावण ने रामचन्द्र के बल को जानते हुए यह ढीठपन किया। यदि वह रामचन्द्र के बल को न जानता तो पहले ही बल से सीता को लाता, छल न करता। रावण का छल करना ही उसकी निर्बलता को प्रकट करता है। रावण ने जान-बूझकर यह कार्य किया, अन्त में नष्ट हो गया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि जो लोग झूठे अभिमानी मनुष्य के भरोसे संसार से बिगाड़ करते हैं और उस कपटी के व्यवहारों को नहीं विचारते, वे सदैव हानि उठाते हैं। देखो, यदि रावण के साथी इस बात का विचार करते कि रावण चोरी करके सीता को लाया है तो कभी रामचन्द्रजी से विरोध न करते और उनका नाश

क्रमशः पृ. ५.....

# रामायण एक आपत्तिकालीन ग्रन्थ [महाकाव्य] है।

## मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम

-स्वामी हरीश्वरानन्द सरस्वती

इतिहास में अतीत के झरोखों से झाखने से पता चलताहे, कि आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व मुगल सम्राट अकवर के समकालीन महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी वर्तमान थे। और वे उस समय के संस्कृत, देवनागरी, भोजपुरी आदि भाषाओं के प्रकान्ड विव्दान थे। जिन्होंने रामायण जैसे महाकाव्य की रचना चौपाइयाँ, दोहों, सोरठों, एवं मधुर छन्दों में की। जिनकी स्वर लहरीयों से वक्ता एंव श्रोताओं के रोंगटे आज भी खडे होजाते हैं। इस काव्य में वीर रस, श्रृंगार रस, हास्य रस, तथा करुणा रस की प्रधानता है। अस्तु--

वैसे तो देशी-विदेशी इतिहास कारों ने अकवर को एक महान सम्राट माना है। अकवर दा ग्रेट कहा है, मगर भारतीय दृष्टि कौण से देखा जाय तो भारतीय संस्कृति आदि के लिये बहुत ही घातक सिध्द हुआ है। यों तो औरंगजेब को सब से कूर शासक इतिहास कारों ने माना है। मगर अकवर तो एक मीठी छुरी के समान था ऐसा भी कुछ इतिहास कारों का मानना है। जो इतिहास कार भारतीयता को प्यार करते है। आजादी के पश्यात सत्ताधारी पक्ष को चाहिये था कि, ऐसे राष्ट्रीय कलंकों का गुण गान करने के स्थान पर, यथा योग्य स्थान उसे इतिहास में दिया जाना चाहिये था। मगर वोट और संन्तुष्टि की राजनीति के लोभ के कारण ऐसा नहीं होने दिया।

स्कूलों, विध्यालयों में इस अकवर सम्राट को महान सम्राट की उपाधि से नवाजा गया है, जो भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण से ठीक नहीं हैं। खैर अब हमें इतिहास के पन्नों की अधिक छानवीन करने की आवश्यकता नहीं हैं।

इस अकबर ने भारतीय इतिहास में अपने आपको उत्तम स्थान दिलाने के लिये, भारत बासियों को जो उस समय तथा आज भी, जो हिन्दू नाम से जाने जाते हैं। उन्हें स्थाई तौर पर इस्लाम सम्प्रदाय का अनुयाई बना देना था। उसकी नीतियों से भारत उस वर्तमान काल से २५-५० वर्षों में भारत सम्पूर्ण रूप से मुसलमान बन गया होता। और भारत में हिन्दू नाम की कोई चिडिया दिखाई नहीं देती, आर्य शब्द का तो कहना ही क्या? वैसे हिन्दू शब्द का भी अपना एक इतिहास है। यह हिन्दू शब्द भारतीय धार्मिक ग्रन्थों अथवा पुस्तकों में कहीं भी देखने को नहीं मिलता है, मगर फिर भी हमारे पौरणिक भाई इस हिन्दू शब्द के पीछे ऐसे पड़े हैं कि इस शब्द को छोड़ना ही नही चाहते हैं, जब कि इस शब्द का भारतीय इतिहास एंव संस्कृति में कोई स्थान ही नहीं है। जैसे-वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रन्थ, गीता, महाभारत, भागवत पुराणों में (यहाँ तक कि भविष्य पुराण) में भी नहीं है, जब कि भविष्य पुराण की रचना अंग्रेजों के काल तक में हुई है।

पंडित स्वर्गीय श्री रघुनन्दन शर्मा जी ने अपने अमर ग्रन्थ । वैदिक संम्पति) में इस हिन्दू शब्द पर अच्छा प्रकाश डालते हुये लिखा है, कि ''यह हिन्दू शब्द किसी भी भारतीय भाषा का न होकर फारसी का शब्द है। जहाँ उनकी भाषा में इस शब्द का अर्थ होता है {काला, काफर, धब्बेदार, गुलाम, जो इस्लाम पर ईमान न लाये, अर्थात सर्व अवगुणों से सम्पन्न जो व्यक्ति हो उसका नाम हिन्दू होता है।)'' इसी लिये भारत में रहने वाले भारतीय मुसलमान अपने आपको हिन्दू कहलाना पसंद नहीं करते हैं। जबकि हिन्दू और हिन्दुस्थान उनके पूर्वजों व्दारा ही हमें दिये गये नाम हैं जिनको हम और हमारा देश अजादी के पश्यात भी अभी तक ढोता चला आ रहा है, और अगर यही हाल रहा तो न जाने कब तक हमें ये बदनुमा दाग ढोता रहना पडेगा। परमात्मा हमारे शासकों को सदबुध्दि प्रदान करे।

हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमान अपने आपको हिन्दु इसलिये कहलाना पसंन्द नहीं करते हैं, क्यों कि वे भली प्रकार इस हिन्दू शब्द का अर्थ जानते हैं कि हिन्दु किस चिडिया का नाम है। अंग्रेजों की कूटनीति (हिन्दू-मुस्लिम विभाजन के आधार पर) भारत का विभाजन हुआ तो मुसलमानों ने अपने विभाजित भाग का नाम पाकिस्तान रक्खा जिसका अर्थ होता है, कि वह भूभाग जो पवित्र है वह पाकिस्तान, बाकी जो बचा गया वह अपवित्र अर्थात हिन्दुस्तान, जो उनके अनुसार अपवित्र है। जब कि इन मुसलमानों के आक्रमण कारी पूर्वजों ने ही यह हिन्दू और हिन्दुस्तान नाम हमें दिये थे, क्योंकि हमारे सीधे सीधे पूर्वज इस मलेच्छ भाषा को जानते नहीं थे, इसलिये सहज ही में इन नामों को स्वीकार कर लिया। मगर आज भी हम अपने पूर्वजों की पढ़ी लिखी संन्ताने समझदार होते हुये भी इस हिन्दु बदनाम नाम को आज तक भी अपने गले में घन्टी की तरह बाधे हुये घूमते रहने में ही अपना गर्व अनुभव करती घूम रहीं हैं।

उसी धूर्त अकबर महान ने भारतीयों की अग्यानता का लाभ उठाते हुये, एक नये संम्प्रदाय को बनाने की घोषणा करदी, जिसका नाम रक्खा, दीने इलाही । इस सम्प्रदाय के शब्द का अर्थ उसने यह स्पष्टीकरण दे कर किया कि, इस नये धर्म में कुछ बाते तो हिन्दुओं की मानी जायगी और कुछ बाते मुसलमानों की मानी जायगी। जैसे उाहरण के लिये हम कहते है, राजा राम। उसने कहा कि राजा राम नहीं बादशाह राम कहो। हम कहते हैं महारानी सीता, उसने कहा महारानी सीता नहीं बेगम सीता कहो। आदि-ऐसे शन्दों की कल्पना कर दी जिससे उसके अनुसार भारतीय हिन्दू धर्म के खतरे की सम्भवनाये बढ़ती चली गई।

कहते हैं कि अकबर शिक्षित नहीं था। मगर उस समय के मुल्ला, मौलवीयों की सलाह- सुचनों पर उसने इस दीने इलाही संम्प्रदाय की घोषणा करादी। परिणाम जो होना था वही प्रारंम्भ होगया जिसकी सम्भावने थीं । सामान्य हिन्दु तो इस कुचक को समझ ही नहीं पाया, दूसरा यह कि राज आज्ञा का पालन करना उनका कर्तव्य

भी था, और एक प्रकार से मजबूरी भी थी, मगर कुछ विद्वानों के मतिष्क में खलबली मचगई। इस दीने इलाही संम्प्रदाय के दूरगामी परिणामों को ध्यान में रखकर उन विद्वानों के मनो मतिष्क में एक प्रकार का भूचाल आगया। उन विव्दानों में से एक उस समय के महान विव्दान महाकवि गोस्वामी तुलसी दास जी भी थे। वैसे सुना जाता है, कि तुलसीदास जी अकबर के नव रत्नों में से एक थे। वे सोचने लगे कि, इस दुष्ट की इस नीति से तो आने वाले (२५-५०} वर्षों में न तो हिन्दुओं के सिर पर चोती रहेगी और न ब्रह्मणों के कन्धे पर यज्ञोपवीत ही दिखाई देगा, अर्थात संम्पूर्ण भारत इस्लाम संम्प्रदाय का अनुयाई बन कर रह जायगा । अर्थात संम्पूर्ण भारत बासी मुसलमान बन जायेगे।

अब में करूँ तो क्या करू? क्यों कि मेरे पास धन बल नहीं है, और नहीं मेरे पास जन बल ही है। और सामने राजवल अर्थात सत्ता पक्ष है और वे अपने आपको असहाय अनुभव करने लगे। वैसे तो विव्दान, साधू, संन्यासियों के पास धन होता ही नहीं है। क्यों कि वो तो स्वयं ही पारिव्राजक का जीवन जीते हैं। और जन वल उनके पास इसलिये नहीं था क्योंकि उस समय तथा कथित हिन्दू दो भागों में बटे हुये थे। एक तो शैव्य जो शिव को अपना आराध्य देव मानते थे, दूसरे वैष्णव जो विष्णू को अपना आराध्य देव मानते थे। और दोनों ही संम्प्रदाय मूर्खता की हदों को पार कर आपस लडते झगडते रहते थे, कि मेरा देव तेरे देव से बड़ा तेरा देव मेरे देव से छोटा है। दूसरा पक्ष भी इसी प्रकार के दावे करता रहता था। ऐसी विपरीत परिस्तियों में कोई भी विव्दान करे भी तो क्या करे? यही परिस्थिति उस समय महात्मा तुलसी दास जी की रही होगी।

अपनी विद्वता के तथा अपने अनुभव के आधार पर उन्हें हिन्दूओं की एक आदत कहो या स्वभाव कहो कि हिन्दू बन्दर की तरह नकल करने का स्वभाव रखते हैं। इसी कमजोरी का लाभ उठाकर उन्हों ने निश्चय किया कि इतिहास में से किसी ऐसे महान पुरुष का जीवन चरित्र इन हिन्दुओं के सामने रखा जाय कि जिससे ये हिन्दू उस व्यक्तित्व का अनुसरण करके अपना जीवन, वेदों की मर्यादा में रह कर अपना जीवन व्यतीत कर सके।

ढूँढते-ढूंढते उन्हें महान संस्कृत के विव्दान एवं संस्कृत के महान कवि श्री बाल्मीकजी व्दारा रचित रामायण महाकव्य मिला जो संस्कृत भाषा में मिला, जो आज भी उपलब्ध है। श्री बाल्मीक जी, श्री राम के समकालीन थे, इसलिये इस महाकाव्य में कोई अतिश्योक्ति नहीं हो सकती। इस एतिहासिक ग्रन्थ में श्रीरामचंन्द्र जी का जीवन चरित्र को सार रूप में श्री तुलसीदास जी ने चौपाई, दोहा, सोरठा, एवं छन्दों के रूप में बड़ा ही सुन्दर एवं मार्मिक वर्णन किया है। उस समय में प्रत्येक घर में रामचरित्र की स्थापना होगई जिस कारण हिन्दुओं के सिर पर चोटी एवं ब्राह्मणों के कन्धे पर यज्ञोपवीत की रक्षा होगई।

अब प्रश्न उतपन्न होता है कि तुलसी दास व्दारा रचित राम चरित्र मानस ने ऐसा हिन्दुओं पर ऐसा क्या जादू कर दियाकि हिन्दुओं के सिर पर चोटी एवं ब्राह्मणों के कन्धे पर यज्ञोपवीत की रक्षा होगई। यही एक ऐसा यक्ष प्रश्न है कि जिस पर भले भले विव्दानों का ध्यान नहीं गया। और राम चरित्र मानस का पठन-पाठन, ढोल, मजीरा, तथा हारमोनियम की ताल पर धाय धाय पढते और नाचते गाते हुडदंग करते रहते है, मगर अर्थ को न कोई पढता है और न कोई सुनता न कोई समझता है। वे कभी इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते हैं कि वे कौन सी ऐसी मर्यादायें थी जिनका पालन मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने किया था। जिनका अनुसरण हमें करना चाहिये। मगर ये सब बातें उनकी समझ के बाहर की बातें हैं। वे तो केवल और केवल श्री राम, हनुमान के चित्रों के सामने दीपक, अगरबत्ती जला कर केवक धाय धाय करते रहते हैं। और श्री राम की, विष्णु के अवतार के रूप में परमात्मा समझ कर उपासना करने का ढोंग मात्र करते रहते हैं। जो वेद मर्यादाओं के विरुध्ध है।

अब हम अपने मूल प्रश्न पर आते हैं कि राम चरित्र मानस ने ऐसा कोन सा जादू कर दिया जिससे हिन्दुओं के दोनों धार्मिक चिन्ह बच गये। जिन सज्जनों ने भी चाहे वे पौराणिक हिन्दू हों अथवा आर्य विचार धारा के लोग हों, जिन्होंने भी रामचरित्र मानस का किसी भी भाव से अध्ययन किया हो, उन्हें पुनः निम्न बातों पर ध्यान देकर अध्यन करना चाहिये, कि रामायण के बालकान्ड में उपासना प्रार्थना के पश्चात, शिव पार्वती का प्रसंग आता है, कि जिसमें शिव पार्वती संम्बद में, शिवजी के व्दारा, विष्णू अवतार रूपी श्रीराम की उपासना करवा दी।

जैसे :- दोहा संख्या १०५ के पश्चात की पहली चौपाई।

चौपाई :- हरि हर विमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपने हुँ नहि जाहीं ।।

तेहि गिरि पर वट विटप विशाला। नित नूतन सुन्दर सब काला ।।

श्री तुलसी दास जी व्दारा किया गया भाष्य निम्न प्रकार है, जो ध्यान देने योग्य है। जे भगवान विष्णु और महादेव जी से विमुख है, और जिनकी धर्म में प्रीति नहीं है, वे लोग स्वप्न में भी वहाँ नहीं जा सकते। उस पर्वत पर एक विशाल वरगद का पेड़ है। जो नित्य नवीन और सब काल (छःऋतुओं) में सुन्दर रहता है।

उपरोक्त चौपाई और भाष्य का गुप्त संन्देश यह है, कि हे हिन्दुओं जो तुम शिव और विष्णु को लेकर आपस में लडते - झगड़ते रहते हो यह ठीक नहीं है, अब समय आगया है, कि एक होजाओ, और विधर्मी से अपने धर्म को बचाओ। अन्यथा सभी विधर्मी बन जाओगे, नहीं तो इन विधर्मीयों की तलवार से मौत के घाट उतार दिये जाओगे। बिना आप दोनों की एकता के वह मोक्ष रूपी परमपद प्राप्त नहीं कर पाओगे। जहाँ प्रतिपल आनन्द ही आनन्द है। अर्थात आप दोनों पक्ष एक होजाओ । अन्यथा संम्पूर्ण हिन्दू जाति न्ष्ट - भ्रष्ट होकर समाप्त होकर विधर्मी बन जायगी। जैसा हम आज देख भी रहे है, कि अरब आक्रमण कारियों के वंशज तो आज भारत में एक भी नहीं, जितने भी इस्लाम को मानने वाले आज भारत में उपलब्ध हैं, वे सभी हिन्दू भारतीयों की जाति उप जातियों की धर्म परिवर्तन की हुई जातियाँ हैं। और भी अन्य कई जगहों पर शिव जी व्दारा विष्णु के अवतार रूप में श्रीराम की भक्ति और उपासना का चित्रण भली प्रकार किया गया है। सुयोग्य पाठक यथा स्थान अध्यन कर निरीक्षण कर लें।

अब हम श्री तुलसीदास जी कृत रामचरित्र मानस के अन्त भाग के उस भाग को दर्शाने का प्रयत्न करते है, जहाँ पर लंका पर चढाई करने से पूर्व रामायण के अनुसार, विष्णु रूपी श्रीराम व्दारा स्वेत बन्ध रामेश्वर पर बाँध बधवाने से पूर्व श्री राम व्दारा शिव लिंग की स्थापना करवा कर विष्णु रूपी अवतार श्रीराम के द्वारा यह कहलवा दिया गया कि ''शिव द्रोही मम दास कहावे, सो नर मोहि सपनेहु नहि भावे।''

उपरोक्त का भाव स्पष्ट है, कि हे मूर्ख हिन्दुओं में स्वयं राम तो शिव जी का ही भक्त और उपासक हैं, और आप लोग मुझे मान्यता देकर शिवजी से द्रोह करते हो। अर्थात हम तो एक दूसरे के भक्त और उपासक हैं ।जब हम में कोई व्देष भाव नहीं है, तो तुम दोनों आपस में क्यों लड़ते-झगड़ते हो ? एक होकर विधर्मीयों का सामना करो। बस यही वह गुप्त संन्देश है । जो तुलसी दास जी ने रामायण के माध्यम से तथा कथित हिन्दू जाति को दिया था। वैसे तो आज भी हिन्दू आन्तरिक रूप से आज भी एक नहीं हैं। मगर उस समय ऐसा अहसास विधर्मी सम्पट और उसके अनुयाईयों को होगया था कि अब हिन्दुओं के दोनों घटक एक होगये हैं। इस प्रकार दीने इलाही का कुप्रभाव समाप्त होगया। और हिन्दुओं की चोटी तथा ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत बच गया। बाकी तो महात्मा तुलसीदास जी ने समयानुसार तथा पात्र की वैदिक मर्यादाओं को ध्यान में रखकर कल्पना का सहारा लेकर ग्रन्थ को रोचक बनाने का भरपूर प्रयत्न किया है।

चलभाष-८१५५०५५२६०

# वेदोज्ज्वला

-आचार्य राहुलदेव

(रामनवमी पर विशेष)

विषय - सप्त मर्यादाओं का उपदेश।

ऋषिः - बृहद्दिवोऽथर्वा, देवता - वरुणः, छन्दः - त्रिष्टुप्, सूक्तम् - अमृता सूक्त

**सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।**
**आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ।।**

-अथर्ववेद ५/१/६-ऋग्वेद १०/५/६

**पद पाठः** - सप्त । मर्यादाः । कवयः । ततक्षुः । तासाम् । इत् । एकाम् । अभि । अंहुरः । गात् । आयोः । ह । स्कम्भः । उपमस्य । नीडे । पथाम् । विऽसर्गे । धरुणेषु । तस्थौ।।

पदार्थः -

कवयः - ऋषि लोगों ने, सप्त - सात, मर्यादाः - मर्यादायें ख्कुमर्यादायें, ततक्षुः - ठहरायी हैं, तासाम् - उनमें से, एकाम् - एक पर, इत् - भी, अभि गात् - चलता हुआ पुरुष, अंहुरः - पापवान् होता है, क्योंकि, आयोः - मार्ग ख्सुमार्ग, का स्कम्भः - थाँभनेवाला पुरुष, ह - ही पथाम् - उन मार्गों, कुमार्गों के, विसर्गे - त्याग पर, उपमस्य - समीपवर्ती वा सबके निर्माता परमेश्वर के नीडे - धाम के भीतर, धरुणेषु - धारण सामर्थ्यों में, तस्थौ - स्थित हुआ है

भावार्थः- मनुष्य निषिद्ध कर्मों से पापी होकर दुःख, और विहित कर्मों के करने से सुकर्मी होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख पाते हैं।

मन्त्र की मुख्य बातें -

१) ऋषियों का स्पष्ट निर्देश है
२) जीवन में सात मर्यादाओं का ध्यान रखें
३) उनमें एक का भी अनुसरण न करें।
४) क्योंकि एक मर्यादा का उल्लंघन भी पाप है
५) उन कुमार्गों का त्याग करके ही
६) मनुष्य ईश्वर की निकटता प्राप्त करता है
७) अथवा ईश्वर के धाम को प्राप्त करता है।

व्याख्याः -

मन्त्र में प्रथम निर्देश है - ''कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः'' अर्थात् ऋषियों ने सात मर्यादाएँ निश्चित की हैं। उन सात मर्यादाओं का विवरण निरुक्तकार यास्काचार्य ने निरुक्त -६/२७ में इस प्रकार किया है-

१) स्तेयम् - चोरी
२) तल्पारोहणम् - व्यभिचार,
३) ब्रह्महत्याम् - ब्रह्महत्या,
४) भ्रूणहत्याम् - गर्भहत्या
५) सुरापानम् - सुरापान,
६) दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवाम् - दुष्ट कर्मों का बार-बार सेवन,
७) पातकेऽनुतोद्यम् - पातक लगाने में झूँठ बोलना,

यह सात मर्यादा बताई हैं। आज राम नवमी पर वेदोज्ज्वला के इस अंक में इस मन्त्र को चयन करने का यही प्रयोजन है कि भगवान राम ने भी अपने जीवन में अक्षरशः इन मर्यादाओं का पालन किया था। क्योंकि राम वेद पढते थे और विश्वामित्र, वसिष्ठ सदृश ऋषियों की आज्ञा का पालन करते थे। राम पर यह मन्त्र बिल्कुल सटीक बैठता है। क्योंकि मन्त्र में जो प्रसिद्ध ''मर्यादा'' शब्द है। भगवान राम को भी इसी उपाधि से विभूषित किया जाता है। तभी तो वे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र कहलाये। राम सा मर्यादा पालन करने वाला दूसरा कोई चक्रवर्ती सम्राट मिलना मुश्किल है। वन गमन से पहले और चौदह वर्ष के वनवास में राम ने वैयक्तिक जीवन में कभी किसी मर्यादा का उल्लंघन किया हो ऐसा वर्णन नहीं मिलता। जब वनवास के बाद राम राजा बने और सार्वजनिक जीवन में आये तो वे और भी अधिक दृढ़प्रतिज्ञ, अनुशासित, कर्तव्यनिष्ठ, तपस्वी दिखाई देते है। सामाजिक जीवन में राजगद्दी पर बैठने के बाद भी राम का जीवन आलस्य, भोग, मनमानी, अहंकार, झूठ आदि से लिप्त नहीं दिखता। इससे भी बडी विशेषता यह है कि राम के राज्य में भी कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो इन मर्यादाओं का उल्लंघन करता हो। क्योंकि रामराज्य में कोई चोरी नहीं करता था। कोई व्यभिचारी नहीं था। ब्रह्महत्या और गर्भहत्या का तो कोई प्रश्न ही न था। ऐसे सुरापान, पाप और झूठ से लोग कोशों दूर थे।

**मन्त्र में दूसरा निर्देश है** -''तासाम् एकाम् इति अभि आगात् अंहुरः'' अर्थात् उनमें एक पर भी चलता हुआ पुरुष पापी होता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि मैं ये सातों गलत काम तो नहीं करता किन्तु मेरे में तो बस एक या दो ही हैं। तो कोई बात नहीं इतना तो चलता है। इसलिये वेद ने स्पष्ट कहा है कि इनमें से एक का भी उल्लंघन मत कर! दरअसल क्या है दुर्गुणों की दोस्ती बहुत अटूट होती है आप एक दुर्गुण अपनाते हो दूसरा और तिसरा अपने आप चला आता है। और फिर धीरे-धीरे सब चले आते है। इसके ठीक विपरीत अच्छे गुणों में ऐसा कम देखने को मिलता है कि एक सद्गुण आ गया तो दूसरा और तीसरा भी अपने आप आ जायेगा। अच्छे गुणों के पाने लिये तो सारे अच्छे गुणो का अभ्यास करना पडता है। इसलिये वेद ने सातों मर्यादाओं में एक का भी उल्लंघन करने का निषेध किया है।

**मन्त्र का तीसरा निर्देश है** - ''आयो स्कम्भः ह पथां विसर्गे'' अर्थात् सुमार्ग को थाँभने वाला पुरुष ही कुमार्ग का त्याग करता है। मन्त्र में यह उपाय बताया गया है कि इन सात मर्यादाओं से वही बच सकता है जो अच्छे मार्गों का अवलम्बन करता है। सही का चयन ही बुरे को छोडने की गारंटी है। आप ''सच-बोलना'' अपना रहे हो मतलब आप ''झूठ-बोलाना'' छोड रहे हो। इसलिए मन्त्र में कहा है अच्छाई अपनाओ बुराई छुटती जायेगी।

**मन्त्र में चौथा निर्देश है** - ''उपमस्य नीडे धरुणेषु तस्थौ'' अर्थात् वह व्यक्ति परमात्मा के (उप) निकट या परमात्मा के (नीडे) धाम में (तस्थौ) स्थिर हो जाता है। मन्त्र की समाप्ति कितने सुन्दर ढंग से हुई है कितना सुन्दर संगतिकरण बैठाया है पहले कहा सात मर्यादाओं का उल्लंघन मत करो। फिर कहा एक भी मर्यादा का उल्लंघन करना पाप है, फिर कहा अच्छे गुणों को अपना करके ही इन कुमर्यादाओं के पाप से बचा जा सकता हैं। फिर कहा अच्छे गुणों को अपनाने और मर्यादाओं के उल्लंघन न करने से आपको ईश्वर की निकटता प्राप्त होगी या ईश्वर का धाम प्राप्त होगा।

भगवान राम ने इन सप्त मर्यादाओं का ध्यान कैसे रखा आइये विचार करते हैं

**पहली मर्यादा है चोरी** - राम ने कभी मन, वचन, कर्म से भी चोरी नहीं की। राम तो यज्ञ न करने की चोरी से भी कभी अभिशप्त नहीं हुये। वेद कहता है ''न स्तेयमद्मि'' मैं चोरी न करुँ। राम इस व्रत में सदैव सफल रहे।

क्रमशः पृ. ७.....

पृष्ठ ३ का शेष.....

न होता। दूसरे, रावण ने जो पाप किया उसका फल पाया, कोई उसे पाप के फल से बचा न सका। जो परस्त्री पर कुदृष्टि करेगा उसकी यही दशा होगी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

शोक है कि हमारे देश के लोग रामायण पढ़ते हैं, नित्य रामलीला देखते हैं, परन्तु उस पर विचार कुछ भी नहीं करते। उनका लीला देखना या नित्य रामायण पढ़ना ऐसा है जैसे एक बकरी का बाग में जाना। वह कभी घास चरती है तो कभी पत्तों पर मुँह मारती है। उसके लिए बाग और जंगल एक-समान हैं। वह हानिकारक स्थलों से हानि तो उठाती है, वन में गढ़े में गिर पड़े तो टाँग टूट जाए, परन्तु बाग की उपयोगिता से उसे कोई मतलब नहीं। इसी प्रकार हमारे देशीय भाई यदि दूषित और गन्दी पुस्तकों को पढ़ते हैं तो शीघ्र उनमें डूब जाते हैं, परन्तु उत्तम पुस्तकों को पढ़कर उनसे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। यदि बहुत किया तो कहीं की दो-चार चौपाई कण्ठस्थ कर लीं और जब कहीं कोई बातचीत हुई तो अपना पाण्डित्य जताने के लिए सभा में कह दीं। मैं बहुत से लोगों को रामायण पढ़ते देखता हूँ, परन्तु उसके अनुकूल आचरण करनेवाले बहुत ही न्यून हैं। अब इस रामायण-सार का सूक्ष्मता से आशय कहते हैं।

रामायण में महावीरजी के चरित्र से सच्चे सेवकों का व्यवहार जान पड़ता है और रावण के इतिहास से जाना जाता है कि यदि कुल में एक भी दुष्ट पुरुष उत्पन्न हो जाए तो सारे कुल को नष्ट कर देता है। दूसरे, रावण पुलस्त्य मुनि का पौत्र था, शिवजी का भक्त था, वेदों का पण्डित था, परन्तु इतने पर भी मांस खाने और मदिरापान और परस्त्री-गमन करने से उसकी पदवी राक्षस की हो गई। अब तो रामायण के पढ़नेवाले लाखों दुराचार करते हैं, परन्तु अपने-आपको साधु और ब्राह्मण ही मानते हैं। देखो महात्मा लोगो! विचारो, जिस परस्त्री-गमन ने रावण को राक्षस बना दिया क्या जो अब करते हैं वा करेंगे वे राक्षस नहीं? रावण शिव का भक्त था, परन्तु मांसाहार ने उसे राक्षस बना दिया। रामायण के पढ़नेवालो! शीघ्र इस राक्षसी व्यवहार को त्याग दो। परस्त्री-गमन, मादक द्रव्यों का सेवन और मांस-भक्षण का शीघ्र त्याग करो और रामायण से जो शिक्षा मिलती है उसका संसार में प्रचार करो! यज्ञादिक कर्म करो! वर्णाश्रम धर्म को ग्रहण करो! सम्प्रदायों को मिटाओ, वेद का प्रचार करो! विद्या को पढ़ो-पढ़ाओ! विद्वान् तपस्वियों का मान करो। मूर्ख वेषधारियों का अपमान करो! मूर्ख वेषधारियों से बचो ! ब्राह्मण वेषधारियों से बचो! ब्राह्मण वेद का अभ्यास करें, क्षत्रिय वीर बनें। बालविवाह को दूर करो! ब्रह्मचर्य का प्रचार करो? वर-कन्या का गुण-कर्म की योग्यता अनुसार विवाह करो। आजकल साठ वर्ष का वर और नौ वर्ष की कन्या-दादा और पोती का विवाह हजार-दो हजार रुपये के लोभ से कर देते हैं और थोड़े दिनों में वह विधवा होकर कुलकलङ्कनी हो जाती है-ऐसा मत करो!

हे रामायण के पढ़नेवालो! अयोग्य से लालचवश विवाह मत करो! धर्म को नष्ट मत करो! माता-पिता की आज्ञा का पालन करो। माता को देवता मानो उसकी श्रद्धापूर्वक सेवा करो! भाइयों से प्रीति रक्खो! थोड़ी बातों में उनसे विरोध मत करो! जहाँ तक हो सके प्राणान्त पर्यन्त भाई को कष्ट मत दो। यदि तुम इस प्रकार का जीवन व्यतीत करोगे तो अत्यन्त सुख होगा। अपनी स्त्रियों को पतिव्रत धर्म सिखलाओ, तुम स्वयं स्त्रीव्रत धारण करो स्त्रियों को मुष्टण्डे साधुओं के पास मत जाने दो उन्हें दुराचारी पुजारियों से अर्थात् पूजा के शत्रुओं से बचाओ! अकेले मन्दिरों में उन्हें जाने से रोको उन्हें समझाओ कि स्त्री के लिए पति ही देवता है। पति को छोड़कर जो स्त्री दूसरे देवता का पूजन करती है, उसका धर्म नष्ट हो जाता है ! आप कभी परस्त्री-गमन मत करो? सदा वेश्याओं से बचो, कुसंग मत करो! कुढङ्गों से बचो! मित्रों को लाभ पहुँचाओ! आपस में मेल करो घर में फूट मत करो दृढ़व्रत रहो। जहाँ बने सच्चे महात्माओं की सेवा करो!

हे पाठको! ये सब कार्य करने से आपकी रामचन्द्रजी के प्रति भक्ति पूर्ण होगी और आप सदा सुख पाओगे, नहीं तो तुमको कुछ फल न होगा। प्रायः मनुष्य परमेश्वर का भजन करते हैं, परन्तु फल नहीं मिलता, कारण यह है कि मनुष्य दश दोषों से नहीं बचते। वे दश दोष ये हैं-

सन्निन्दासतिनाम वैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा श्रुतिशास्त्रदैशिकगिरां नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागो हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जये शिवस्य च हरेर्नामापराधा दशः।।

अर्थ- जो सत्पुरुषों की निन्दा करता है, उसे परमेश्वर नाम-फल नहीं देता। जो ऐसे नास्तिकों का नाम-माहात्म्य सुनाता है, जो महादेव और विष्णु को देव समझता है, जिसे वेदशास्त्र और गुरु की आज्ञा में श्रद्धा न हो, उसके लिए ईश्वर का नाम जपना व्यर्थ है। जो नाम के सहारे से मांस-मदिरा आदि दूषित वस्तुओं का सेवन करता है और नित्य-नैमित्तिक धर्म को छोड़कर केवल नाम ही जपा करता है अथवा ईश्वर के नाम को अन्य कार्यों के बराबर ही एक काम समझता है, उसे सब कामों से श्रेष्ठ नहीं मानता-ऐसे मनुष्य को नाम जपने से कोई फल प्राप्त नहीं होता।

# वेद अपौरुषेय (ईश्वर-प्रदत्त) ज्ञान एवं भाषा के ग्रन्थ हैं

-मनमोहन कुमार आर्य

वेद चार मन्त्र संहिताओं के ग्रन्थ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को कहते हैं। वेदों का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी यह सृष्टि पुरानी है। हमारे प्राचीन काल के मनीषियों से लेकर ऋषि दयानन्द (१८२५-१८८३) तक ने वेदों की उत्पत्ति, इसके रचयिता व ज्ञान दाता तथा इसकी भाषा पर गहन चिन्तन व खोज की है। सभी एक मत से स्वीकार करते हैं कि चारों वेद ईश्वर प्रदत्त ज्ञान हैं और इनकी भाषा, शब्द-अर्थ-सम्बन्ध भी ईश्वर से इसी रूप में प्राप्त हुए हैं जैसे कि वह इस समय वेदों में उपलब्ध होते हैं। वेदों में किसी अन्य पुस्तक का अस्तित्व व इनसे पूर्व किसी ज्ञान का उल्लेख न होने के कारण यह चार वेद आदि ज्ञान सिद्ध होते हैं। जब भी हम कोई पुस्तक या लेख लिखते हैं तो हमें भाषा व उस विषय के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वह ज्ञान हमें विद्वानों व उनके ग्रन्थों से सुलभ होता है। अतः वेद से पूर्व वेदों में व अन्य किसी श्रोत व अनुमान आदि से किसी ज्ञान व भाषा का उल्लेख न मिलने के कारण यह निष्कर्ष निकलता है कि वेद सबसे प्राचीन हैं। वेदों में निहित ज्ञान को यदि पढ़े तो यह ज्ञात होता है कि वेद ईश्वर से प्राप्त हुए हैं। हम जानते हैं कि संसार वा ब्रह्माण्ड की रचना अत्यन्त सुदूर प्राचीन काल में हुई है। यह सारा ब्रह्माण्ड विज्ञान के नियमों का पूर्णतः पालन कर रहा है। कोई भी रचना बिना कर्ता वा रचयिता के नहीं होती। इस सिद्धान्त के अनुसार इस ब्रह्माण्ड की रचना के स्रष्टा, कर्ता व रचयिता को भी हमें स्वीकार करना होगा। वह कौन हो सकता है? इस प्रश्न पर विचार करने पर वह सत्ता ज्ञानवान सिद्ध होती है। एकदेशी सूक्ष्म व अगोचर जीवरूपी ज्ञानवान सत्ता में सुख व दुःख दोनों देखे जाते हैं। जिसे दुःख होगा वह सत्ता ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकती जिसे सहस्रों, करोड़ों व अरबों वर्षों तक निरन्तर करना पड़े। इस कारण उस सृष्टिकर्ता का दुःखों से निवृत होना तथा आनन्द से युक्त होना स्वीकार करना होगा। अतः यह सृष्टि एक ज्ञानवान तथा आनन्दस्वरूप सत्ता ईश्वर से ही बनी है और वही इसे धारण किये हुए है। उसी से इस सृष्टि का संचालन व पालन हो रहा है। वही कालान्तर में इसकी प्रलय करेगा। इससे सम्बन्धित सभी नियम वेद एवं वैदिक साहित्य से प्राप्त होते हैं। ईश्वर का एक नाम सच्चिदानन्द प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है कि ईश्वर सत्य, चित्त व आनन्दस्वरूप वाला व इन गुणों से युक्त है। वेद, उपनिषद एवं दर्शन आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हमें ईश्वर विषयक सत्य, तर्क व युक्ति से सिद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। वेदों के ज्ञान से इतर वा विपरीत सभी मान्यतायें तर्क के सम्मुख खण्डित हो जाती हैं। वेदज्ञान ही ऐसा ज्ञान है जो ईश्वर, जीव व प्रकृति का विचार व चिन्तन करने पर तर्कपूर्ण एवं सत्य सिद्ध होता है। वेद में पूर्ण ज्ञान है। ऋषि दयानन्द से पूर्व ऋषियों की परम्परा रही है। वह सभी ऋषि वेद को ईश्वरीय ज्ञान सहित सब सत्य विद्याओं का पुस्तक स्वीकार करते थे। ऋषि दयानन्द ने इस मान्यता को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ लिखकर तथा वेदभाष्य का प्रणयन करके सत्य सिद्ध किया है। अतः हमारी इस सृष्टि की उत्पत्ति सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वान्तयामी, सर्वशक्तिमान, अनादि, अनुत्पन्न, अविनाशी, नित्य व अनन्त गुणों वाले परमात्मा से हुई है। वेदों में जो ज्ञान है वह ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है जो शतपथ ब्राह्मण के अनुसार परमात्मा ने सृष्टि के आदि काल में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा की आत्माओं में शब्द-अर्थ-सम्बन्ध के ज्ञान सहित प्रेरणा द्वारा स्थापित वा प्रतिष्ठित किया था। सत्यार्थप्रकाश पढ़कर इन सभी तथ्यों को जाना जा सकता है।

कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व पर ही प्रश्न उठाते हैं। यदि वह सत्यार्थप्रकाश का सातवां समुल्लास पढ़ ले तो उनकी एतद्विषयक मिथ्या-धारणायें, अविद्या वा शंकायें दूर हो सकती हैं। ऋषि ने इस समुल्लास में लिखा है कि ईश्वर सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध होता है। जो लोग यह मानते हैं कि ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण नहीं घटते उनको उत्तर देते हुए ऋषि दयानन्द कहते हैं कि जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं परन्तु वह भ्रम रहित होना चाहिये। इस प्रकार इन्द्रियों और मन से (पदार्थों के) गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं। जैसे त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण आदि पांच इन्द्रियों से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी, जो कि पृथिवी है, उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है, वैसे ही इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष (मनुष्य शरीर, फल, फूल, वृक्ष, अन्न, ओषिधि, वायु व जल आदि में) आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। फल-फूल व मनुष्य की आकृति को देखकर इसमें हमें जो विशेष गुण दृष्टिगोचर होते हैं इससे उन पदार्थों की रचना व उनमें गुणों का स्थापन करने से उन गुणों के अधिष्ठान व अधिष्ठाता ईश्वर का प्रत्यक्ष अर्थात् स्पष्ट होता है। यहां ऋषि दयानन्द ने ईश्वर का अस्तित्व दार्शनिक दृष्टि से सिद्ध किया है। अब एक अन्य उदाहरण देते हुए वह लिखते हैं 'जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जातें हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। यह जीवात्मा (में जीवात्मा की अपनी) ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से (होता) है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उस को उसी समय दोनों (ईश्वर व जीवात्मा) प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने (उसके ज्ञानी होने तथा वेदों का ज्ञान देने) में क्या सन्देह है, क्योंकि कार्य (सृष्टि) को देखकर कारण (ईश्वर) का अनुमान होता है।'

इस जानकारी से यह ज्ञात होता है कि ईश्वर का अस्तित्व है और वह सृष्टि के आदि में सृष्टि विषयक तथा मनुष्य के लिए आवश्यक सब प्रकार का ज्ञान देता है। जहां तक आदि भाषा का प्रश्न है, वह भी वेदों के ही माध्यम से ईश्वर हमें प्रदान करता है। वेदों के जो मन्त्र हैं व उनमें जो भाषा है, वह भी ईश्वर द्वारा ऋषियों को प्रदान की गई थी। सृष्टि के आरम्भ में ऐसी उत्कृष्ट भाषा का मनुष्य के द्वारा निर्माण नहीं हो सकता। नासा के वैज्ञानिकों ने भी संस्कृत भाषा को सब भाषाओं से उत्तम बताया है व यह है भी। संस्कृत भाषा में एक-एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं। प्रसंग के अनुसार ही उनके अर्थ लिये जाते हैं। शब्द की उत्पत्ति का आधार भी संस्कृत के पाणीनीय- अष्टाध्यायी व निरुक्त शास्त्र से ज्ञात होता है। हम वेदों के सुप्रतिष्ठित विद्वान डा. रामनाथ वेदालंकार जी के 'वैदिक भाषा की अर्थ-गरिमा' शीर्षक से लिखे उनके विचार यहां दे रहे हैं। वह वेदमंजरी में लिखते हैं 'वैदिक भाषा का एक-एक शब्द अपने अन्दर अर्थ-वैपुल्य का अगाध भण्डार भरे हुए है। अर्थ-वैपुल्य में संसार-भर की अन्य कोई भाषा इस भाषा की तुलना नहीं कर सकती। वैदिक शब्दों में से एक के बाद दूसरा अर्थ निकलता चलता है और व्यक्ति अपने-अपने स्तर के अनुसार स्थूल, सूक्ष्म, साधारण, गम्भीर, गम्भीरतर या गम्भीरतम अपेक्षित अर्थ को ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ हम 'देव' शब्द को ही ले सकते हैं। यह शब्द 'दिवु' धातु से बना है, जो क्रीड़ा, विजयेच्छा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, इच्छा और गति अर्थ में धातु-पाठ में पठित है। अतः 'देव' का यौगिक अर्थ क्रीड़ा-परायण, विजयेच्छु, व्यवहारज्ञ द्युतिमान, स्तुतिकर्ता, मोदमय, मस्त, शयन-कर्ता, कल्पना के स्वप्न-लोक में विचरनेवाला, इच्छाशील, गतिमान, ये सब अर्थ हो जाते हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में घटित हो सकते हैं। निरुक्त के अनुसार 'देव' का अर्थ दाता और स्वयं चमकने तथा अन्यों को चमकानेवाला और द्युस्थान में रहने वाला भी होता है, देवो दानाद् वा, दीपनाद् वा, द्योतनाद् वा, द्युस्थानो भवतीति वा। -निरुक्त ७.१५। इन अर्थों को दृष्टि में रखते हुए परमात्मा, जीवात्मा प्राण, मन, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, अग्नि, विद्युत, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, विद्वद्गण, इन्द्रियां आदि विविध अर्थ 'देव' पद से गृहीत हो जाते हैं। इसी प्रकार वैदिक 'यज्ञ' शब्द से यज्ञाग्नि में सुगन्धित पदार्थों का होम करना ही नहीं, अपितु, ब्रह्मयज्ञ, आत्मयज्ञ, अतिथियज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञ, जीवनयज्ञ, सृष्टियज्ञ, राष्ट्रयज्ञ, संवत्सरयज्ञ, शिल्पयज्ञ, कृषियज्ञ, रणयज्ञ, दानयज्ञ आदि विविध कर्म सूचित होते हैं। धनवाची रयि, द्रविण, रत्न, हिरण्य, द्युम्न, वसु, राधस्, वेदस् आदि शब्द वेद में केवल भौतिक धन-दौलत के ही वाची नहीं होते, प्रत्युत वे विद्याधन, राज्यधन, शारीरिक सम्पदा, प्राणिक सम्पदा, मानसिक सम्पदा एवं आत्मिक सम्पदा की ओर भी इंगित करते हैं। अंहस्, रपस्, दुरित, रिष्टि, रक्षस्, वृत्र, यातुधान आदि शब्द भी शारीरिक, आत्मिक, वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, सभी क्षेत्रों के दोषों को सूचित करते हैं, चाहे वे व्याधियां हों, चाहे चिन्ताएं हों, चाहे आध्यात्मिक मार्ग में बाधक बनकर आनेवाली कामादि दुष्प्रवृत्तियां हों। वैदिक शब्दों का इस प्रकार का अर्थ-वैपुल्य और तन्मूलक अर्थ-गाभीर्य वेदों में पदे-पदे पाया जाता है। यह उपासक को अपने-अपने स्तर के अनुकूल अर्थ ग्रहण करने में परम सहायक होता है, एवं एक ही मन्त्र विविध स्तर के साधकों के लिए अपने-अपने योग्य प्रेरणा का परम स्रोत बन जाता है।

यदि किसी मन्त्र में गौओं की याचना की गई है, तो ये गौएं पशु-पालक के लिए गाय पशु हैं, वेद-प्रेमी के लिए वेद-वाणियां हैं, इन्द्रिय-जय के अभिलाषी के लिए इन्द्रियां हैं, शिल्पकार या सूर्य से लाभ उठाने के इच्छुक व्यक्ति के लिए सूर्य-किरणें हैं, अध्यात्म-साधक के लिए आत्म-सूर्य या परमात्म-सूर्य की किरणें हैं और जो इन सभी से लाभ उठाने की अभीप्सा रखता है, उसके लिए एक साथ ये सभी अर्थ ग्राह्य हैं। इस प्रकार की अर्थगरिमा के कारण वेदमन्त्र भक्ति-प्रवण साधक के लिए स्तुति, प्रार्थना, उपासना एवं समर्पण के सुन्दर माध्यम सिद्ध होते हैं।'

हमने इस लेख में यह बताने का प्रयास किया है कि वेद अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है तथा इसकी भाषा भी मनुष्यों की रचना न होकर ईश्वर प्रदत्त ही है। हम आशा करते हैं पाठकों से इससे कुछ लाभ होगा।

# राम कितने वर्ष वन में रहे?

परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

श्रीराम कितने वर्ष वन में रहे, यह एक ऐसा यक्ष प्रश्न है, जिसका उत्तर पाने के लिए महर्षि वाल्मीकि प्रणीत आदिमहाकाव्य रामायण का समय अनुशीलन अनिवार्य है। क्योंकि रामायण रामकथा का आदि महाकाव्य है और महर्षि वाल्मीकि आदि महाकवि माने जाते हैं। अतः वाल्मीकि रामायण के अन्तःसाक्ष्य के प्रमाणों के आधार पर राम कितने वर्ष वन में रहे. समय का निर्धारण किया जाना संभाव्य है। बाहरी प्रमाणों के आधार पर समय निश्चित किया जा सकता है, किन्तु बाह्य प्रमाण मानक नहीं माना जाएगा।

रामकथा में वनवास का प्रसंग अद्‌भुत है। रामायण, महाभारत, रघुवंश ओर श्रीरामचरितमानस, ये हमारे राष्ट्र के चार प्रतिनिधि महाकाव्य है। अपौरुषेय वेद के बाद लौकिक संस्कृत साहित्य का प्राचीनतम ऐतिहासिक महाकाव्य महर्षि वाल्मीकि विरचित रामायण है, जिसे रामकथा का आदि महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। यह पुरुषोत्तम राम के चरित्र का मूल उत्स है। अतः वाल्मीकि रामायण को परम प्रमाण मानकर श्रीराम के बनवास अवधि का विवेचन करना समीचीन प्रतीत होता है।

रामायण रामकथा का रूचिर दर्पण है, लेकिन वाल्मीकि रामायण में प्रमुख घटनाओं के संदर्भ में उनके वर्ष मास, ऋतु, पक्ष तथा तिथियों का एक साथ अंकन कहीं भी नहीं मिलता है। प्रायः संपूर्ण रामायण में ऋतुओं के चिन्ह ही वर्णित है। वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड के अनुसार राम को चौदह वर्षों का वनवास चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ था। अतः बनवास की समाप्ति चैत्र शुक्ला दशमी को माननी होगी तब भारतीय मनीषी किस आधार पर प्रतिवर्ष दीपावली के दिनों में रावणवध और श्रीरामजी की विजय की तिथि आश्विन मास या कार्तिक मास को मानते हैं। यह एक गंभीर चिन्तन-मनन का विषय है।

यह निर्विवाद सत्य है कि लंकापति रावण का वध चैत्र मास में हुआ था। संत महाकवि तुलसीदारा प्रणीत श्रीरामचरितमानस के अन्त में श्रीराम के चौदह वर्षों के वनवास का तिथिपत्र दिया हुआ है। वहाँ स्पष्ट लिखा है- चैत्र शुक्ल चौदस जब आई। मरयो दशानन जग दुखदाई। इससे स्पष्ट होत है कि श्रीराम ने चैत्र शुक्ला चतुर्दशी के दिन रावण का वध किया था।

रामकथा संबंधी मुख्य घटनाओं के तिथि-निर्णय पर महर्षि अग्निवेश का एक स्वतंत्र ग्रन्थ है, जिसे 'अग्निवेश रामायण', 'सार रामायण या रामायण सार संग्रह भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त कालिका पुराण, देवीभागवत्, स्कन्दपुराण, महानाटक, भट्‌ट काव्य में भी तिथि निर्देश किया गया है, जो परत प्रमाण होने से मान्य नहीं है। इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण की भूषण तिलक तथा शिरोमणि नाम की टीकाओं में जगह-जगह पर राम लीलाओ का तिथि निर्देश किया गया है। प्रायः सभी मनीषियों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार समय निर्णय की चेष्टा की है। मेरी इन सबके प्रयत्नों के प्रति श्रद्धा-बुद्धि है और अपने कठिन परिश्रम के लिए सभी मनीषी साधुवाद के पात्र हैं, लेकिन वाल्मीकि रामायण के अन्तःसाक्ष्य के आलोक में किसी भी मनीषी ने रामलीला का तिथि निर्देश नहीं किया है, जो चिन्तन का विषय है।

मेरे जैसा ज्ञान पिपासु के लिए वाल्मीकि रामायण श्रीराम के जीवन चरित्र को चित्रित करने वाला अनुपम आदि महाकाव्य है। आजकल इसके बार पाठ प्रचलित है- १- दाक्षिणात्यपाठ २ गौडीयपाठ, ३- पश्चिमोत्तरीयपाठ। ४- उत्तर भारत का संस्करण (कश्मीरी संस्करण। इसमें गौडीयपाठ गैरेशियो (पेरिस) ने स्पेनिश भाषानुवाद सहित वाल्मीकि रामायण को महाराज सार्डिनिया की सहायता से छपवाया था। उसमें केवल छह ही काण्ड है। यह वाल्मीकि रामायण की मूल रचना का प्रामाणिक रूप माना गया है। यह माना जा रहा है कि रामायण की मूल हस्तलिखित प्रति गौरशियो की पुस्तकालय में सुरक्षित है।

वाल्मीकि रामायण के अन्तःसाक्ष्य के आलोक में यह कहा जा सकता है कि दशरथनन्दन श्रीराम ने तेरह वर्ष सात महीना तक ही वन में निवास किया था यह सनद रहे कि महाभारत के विराट पर्व में बनवास चाहने वाले पाण्डवों को धर्म घुरन्धर भीष्म ने जिस प्रकार वर्ष और मास गिनने की रीति बतलायी है, उसी प्रकार श्रीराम-वनवास के वर्ष और मास भी गिने गए थे। वह रीति इस प्रकार है- जिस वर्ष अधिक मास आता था. उस वर्ष तेरह महीने और जिस वर्ष क्षयमास आता था, उस वर्ष ग्यारह महीने माने जाते थे। राम वनवास के चौदह वर्षों में अधिक मास ५ हो जाना सम्भाव्य है। परन्तु इतने दिनों के बीच में क्षयमास एक भी नहीं आया। इसलिए अधिकमास पाँच रहे। इन पाँच अधिक मासों को चौदह वर्षों में घटाने से स्पष्ट होता है कि श्रीराम ने तेरह वर्ष सात महीने ही वन में निवास किया।

पृष्ठ ५ का शेष.....

**दूसरी मर्यादा है व्यभिचार** – राम तो एक पत्नीव्रत गृहस्थ धर्म में रहने वाले ऋषि थे। पूरे वनवास के १४ वर्षों में माता सीता साथ में रहते हुये भी कभी सन्तान के लिये नहीं गये ना ही सहवास किया। व्यभिचार तो बहुत दूर है।

**तीसरी मर्यादा है ब्रह्महत्या** – राम ने सदा ही गुरुओं की आज्ञा का पालन किया। राम ने कभी न वेद की आवमानना की, ना ही गुरुओं का अनादर किया। राम तो ब्रह्महत्या नहीं अपितु ब्रह्मपूजा के लिये जाने जाते हैं।

**चौथी मर्यादा है भ्रूण हत्या** – अहिल्या उद्धार, माता कैकेयी से उनके वार्तालाप से पता लगता है कि स्त्रियों माताओं बहन बेटियों के लिये उनके हृदय में कितना आदर था।

**पाँचवीं मर्यादा है सुरापान** – चक्रवर्ती सम्राट होकर भी राम का सुरा और सुरापान से दूर रहना उनको देवत्व की कोटि में रखता है।

**छठवीं मर्यादा है दुष्कृतस्य कर्मणः** पुनः पुनः सेवाम् – दुष्ट कर्मों का बार-बार सेवन करना। राम को कभी कोई बुराई न दबा सकी।

**सातवीं मर्यादा है पातकेऽनुतोद्यम्** – पातक लगाने में झूँठ बोलना, पहले मनुष्य पाप करता है फिर उसे छुपाने के लिये झूठ बोलता जाता है। राम की यह विशेषता थी कि वे ना पाप करते थे और न ही पाप करने वलों को सहते थे। वे समाज से पाप दूर करने में भी तत्पर रहते है। तभी तो उन्होंने कहा था कि मैं पृथ्वी को राक्षसों से मुक्त कर दूँगा। और उन्होंने किया।

राम हमारी संस्कृति प्रतिष्ठा पुरुष है। राम हमारी संस्कृति के पर्याय है। आज बच्चों बच्चों को राम के जीवन चरित्र को बताने की आवश्यकता है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

आप सभी को रामनवमी की बहुत-बहुत शुभकामनायें!

# नवरात्रों या नौ इन्द्रियों पर नियंत्रण में उपवास और निराहार रहने का सत्य अर्थ क्या हैं?

-डॉ. विवेक आर्य

प्रायः उपवास से सब यही निष्कर्ष निकालते हैं की भोजन ग्रहण न करना अथवा भुखा रहना। मगर क्या उपवास का अर्थ वाकई में निराहार रहना हैं?

**उपवास का अर्थ :-** शतपथ ब्राह्मण १/१/१/७ के अनुसार ''उपवास'' का अर्थ गृहस्थ के लिए प्रयोग हुआ हैं जिसमें गृहस्थ के यज्ञ विशेष अथवा व्रत विशेष करने पर विद्वान लोग उनके घरों में आते हैं अर्थात उनके समीप (उप) रुकते (वास) हैं। इसलिए विद्वानों का सत्संग करना उपवास कहलाता था।

**निराहार का अर्थ :-** उपवास के समय भूखा रहना अर्थात निराहार रहने का तात्पर्य शतपथ ब्राह्मण १/१/१/८ के अनुसार विद्वान के घर पर आने पर उनके भोजन ग्रहण करने के पश्चात ही गृहस्थी को भोजन ग्रहण करना चाहिए अर्थात तब तक निराहार रहना चाहिए।

उपवास और निराहार का मूल उद्देश्य विद्वानों का सत्संग, उनसे उपदेशों का श्रवण एवं उनकी सेवा शुश्रुता था। कालांतर में मूल उद्देश्य गौण हो गया और सत्संग, स्वाध्याय का स्थान भूखे रहने ने ले लिया हैं। केवल भूखे रहने से कुछ भी प्राप्ति नहीं होती। वेदों के स्वाध्याय एवं वैदिक विद्वानों के सत्संग से ही ज्ञान की प्राप्ति होती हैं। आशा हैं पाठक उपवास के सत्य अर्थ को समझ कर उसके अनुसार विद्वानों का सान्निध्य ग्रहण कर अपने जीवन में नौ इन्द्रियों पर संयम रखते हुए ज्ञान का प्रकाश करेंगे।

## नौ इन्द्रियों के निग्रह का स्मरण करवाते नवरात्र

सर्दी जब आने को होती है और गर्मी भाग रही होती है तो वह आश्विन के नवरात्र होते हैं। और सर्दी के जाने तथा गर्मी शुरु होने के दिनों में आती है। चैत्र की या वासंती नवरात्र कहलाती है, दो प्रधान ऋतुओं का मिलन काल इस तरह अतिमहत्वपूर्ण है।

नवरात्र या ऋतुओं का संधिकाल स्थूल और सूक्ष्म जगत में चल रहे प्रवाहों का संधिकाल है जैसे दिन व रात जब मिलते हैं तो वह भी संधिकाल कहलाता है। वैदिक काल से इस समय की ईश्वर उपासना को संध्या कहा जाता है। उसी तरह जब दो ऋतुएँ मिलती है तो वह ऋतुओं का संधिकाल कहलाता है और यह काल ईश्वर उपासना और आत्म निरीक्षण के लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

इन दिनो सूक्ष्म जगत में अनेक प्रकार की हलचलें होती है। शरीर से लेकर पूरे चेतन जगत में ज्वार भाटा जैसी हलचलें पैदा होती है। जीवनी शक्ति शरीर में जमी हुई विकृतियों को बाहर निकालने का प्रयास करती है। अंतरिक्ष में व्याप्त सूक्ष्म शक्तियां साधक के शरीर, मन, अंतकरण का कायाकल्प करने का प्रयास करती है।

वैदिक साहित्य में नवरात्रों का विस्तृत वर्णन है। इनकी व्याख्या करते हुए कहा है कि इसका शाब्दिक अर्थ तो नौ राते ही है पर इनका गूढार्थ कुछ और है। नवरात्र का एक अर्थ यह है कि मानवी कायारूपी अयोध्या में नौ द्वार अर्थात् नौ इन्द्रियां है।

एक मुख, दो नेत्र, दो कान, नासिका के दोनों छिद्र और दो गुप्त गुप्तेंद्रिय जैसे नौ द्वारों के विषय में जो जागरूक रहता है, वह उनमें लिप्त नहीं होता और न ही उनका दुरूपयोग करके अपना तेज, ओज और वर्चस्व को बिगाड़ता है, वही योगी यति है। नवरात्र के इन नौ दिनों में साधक अपने-अपने ढंग से संयम, साधना और संकल्पित अनुष्ठान करते है और उन प्रत्येक क्षणों में साधक अपनी चेतना को शुद्ध करता हुआ आगे बढ़ने का प्रयास करता है।नौ दिन और रात्रि में नौ इन्द्रियों पर संयम या नियंत्रण रखने के अभ्यास का वर्तमान नाम नवरात्र बन गया।


## निर्वाचन

**जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा, अलीगढ़**

| | | |
|---|---|---|
| प्रधान | : | ब्र. पूरन सिंह आर्य |
| मंत्री | : | श्री गिरीश चन्द्र शास्त्री |
| कोषाध्यक्ष | : | श्री यतीश कुमार आर्य |

**आर्य समाज कसौली, मुजफ्फर नगर**

| | | |
|---|---|---|
| प्रधान | : | श्री विजयपाल सिंह आर्य |
| मंत्री | : | श्री जगदीश आर्य |
| कोषाध्यक्ष | : | श्री सुभाष उर्फ पप्पू |

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र ३० मार्च, २०२३ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१

एक प्रति ₹ ५.००

# आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

.....

## आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. की अन्तरंग सभा की बैठक एवं साधारण सभा के अधिवेशन के कतिपय चित्र

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।